P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-6* February (Part2) * 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

भूमंडलीकरण और कविता

श्रीकांत पाण्डेय
शोध छात्र,
हिंदी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली, भारत

सारांश

बींसवीं सदी का हिंदी साहित्य हिंदी साहित्य के उरूज़ का युग है. इस युग में हिंदी साहित्य के विविध आंदोलनों मसलन – छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता आदि काव्यान्दोलनों विकास हुआ. इस सदी में हिंदी साहित्य की यथार्थवादी, समाजोन्मुख अवधारणा का विकास हुआ। प्रस्तुत शोधपत्र में हिंदी कविता के विशेष सन्दर्भ में विचार किया गया है। यह स्पष्ट करने की कोशिश की गई आलोचक और रचनाकार साहित्य के जिन दायित्वों को रेखांकित किया था. उनका बीसवीं सदी के अंतिम दशक में हिंदी कविता ने बखूबी निर्वहन किया है और अपने यथार्थवादी – समाजोन्मुख प्रवृत्ति को बनाए रखा है. इस क्रम हिंदी कविता ने भूमंडलीकरण जनित प्रभावों की सक्षम आलोचना प्रस्तुत की है।

मुख्य शब्द : भूमंडलीकरण, हिंदी कविता।

प्रस्तावना

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी के प्रथम व्यवस्थित साहित्येतिहास ग्रंथ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' और अपने प्रसिद्ध निबंध संग्रह श्रृंखला 'चिंतामणि' के प्रथम भाग में कविता के संदर्भ में दो महत्त्वपूर्ण निष्पत्तियां दी हैं. पहले ग्रंथ में उन्होंने लिखा है कि साहित्य जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब होता है. दूसरे ग्रंथ में उन्होंने कहा है कि कविता ह्रदय की मुक्तावस्था है और इसका विधान किया जाता है. साहित्य का जनता की चित्तवृति से संबंध स्थापित करने के पीछे आचार्य रामचंद्र शुक्ल का आशय साहित्य के न केवल मनुष्य द्वारा उत्पादित उसकी भौतिक पारिस्थितिकी के घनिष्ठ संबंध की ओर संकेत करता है अपितु मनुष्य के भाव जगत/मन से संबंधित मनोजगत अर्थात् मानसिक क्रियाव्यापारों के साथ उसके संबंध को भी स्थापित करना है. यह केवल संयोग नहीं है कि 'कविता क्या है' निबंध 'चिंतामणि' भाग एक का निबंध है जिसमें आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मनोविकार संबंधी निबंध संकलित हैं. उल्लेख्य निबंध में कविता को परिभाषित करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा प्रयुक्त शब्द 'विधान' से आशय भी मनुष्य द्वारा किए गए 'किसी कार्य का आयोजन' और 'व्यवस्था' से है.[1] इस प्रकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल कविता को किसी अलौकिक शक्ति की निर्मिति न मान कर मनुष्यीकृत भौतिक जगत में उत्पन्न और उससे सम्बद्ध कृति के रूप में देखते हैं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इतिहास ग्रंथ (1929 ई०) और चिंतामणि भाग एक (1939)[2] के एक दशक के दौरान साहित्य की मनुष्यीकृत अवधारण जो साहित्यिक अवधारणात्मक परिप्रेक्ष्य है उसी दौर में मुंशी प्रेमचंद ने प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए दिए गए अपने प्रसिद्ध भाषण में साहित्य की इसी मनुष्यीकृत अवधारणा पर बल दिया जब उन्होंने कहा कि साहित्य राजनीति के आगे चलने वाली मशाल है. अरस्तू ने अपनी पुस्तक 'Politeia' में मनुष्य के अस्तित्व (Beings/Existence) को राजनीतिक अस्तित्व (Beings/Existence) के रूप में परिभाषित किया.[3] प्रेमचंद जिस राजनीति की चर्चा कर रहे थे वह न केवल मनुष्य के चेतना से संबद्ध है अपितु उसके भौतिकतावादी निहितार्थ हैं. कार्लमार्क्स का मानना है कि मनुष्य की चेतना उसके अस्तित्व की निर्धारित नहीं करती वरन उसका भौतिक अस्तित्व उसकी चेतना को निर्धारित करता है. साफ है मार्क्स जिस तरह मनुष्य की चेतना जगत को भौतिक संदर्भों में देख रहे थे उन्हीं भौतिक संदर्भों से प्रेमचंद भी मनुष्य राजनीतिक चेतना का संबंध बता रहे थे क्योंकि प्रेमचंद अपनी यह बात उस दौर में कह रहे थे जब भारत औपनिवेशिक गुलामी की छाया से ग्रस्त था और इस औपनिवेशिकता के खिलाफ भारत में एक जबरदस्त राजनीतिक माहौल बना हुआ था. जिसके नाभिक में मनुष्य की मुक्ति की आकांक्षा का तत्त्व विद्यमान था. इस प्रकार प्रेमचंद भी आचार्य रामचंद्र शुक्ल की साहित्य की मनुष्यीकृत मुक्तिकामी भूमिका को ही रेखांकित कर रहे थे. इस पूरे प्रकरण का आशय यह हुआ कि बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में हिंदी साहित्य की जो भूमिका तय की गई या की जा

रही थी उसका विकास आगे चलकर बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में एक जनवादी, प्रगतिकामी साहित्यक कार्यभार के रूप में हुआ. छायावादी कविता के निकटवर्ती पहले की दौर की कविता से लेकर नवें दशक की कविता तक, कविता की मुक्तिकामी, मनुष्यीकृत धारणाओं का आवेग प्रवाहित होता रहा. 1967 ई० के नक्सलबाड़ी के राजनीतिक जनउभार समकालीन कविता और नवें दशक के दौर तक राजनीति और मनुष्य कविता की केंद्रीय विषय–वस्तु बने रहे.

ऊपर किए गए विश्लेषण का तात्पर्य इतना ही है कि बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में 'राष्ट्रीय आन्दोलन' हिंदी साहित्य में एक प्रतिरोधी साहित्य चेतना का विकास उसकी आधारभूमि से पुष्पित–पल्लवित होता रहा. कालांतर में द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् द्विध्रुवीय दुनिया की शीतयुद्ध कालीन राजनीति ने पूरे राजनीतिक परिदृश्य को बदल कर रख दिया. इस द्विध्रुवीय होड़ के बीच नए वैज्ञानिक अनुसंधानों ने नई तकनीक का विकास किया. जिसने एक नए आर्थिक बदलाव को जन्म दिया. जिसका भविष्य में भूमंडलीकरण के उभार और प्रसार में नया योगदान होने वाला था. ध्यान रखना होगा कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भारत जैसे महादेश में ब्रिटिश औपनिवेशवाद का सिक्का खोटा साबित हुआ. साम्राज्यवादी आक्रमण, कब्जे और गुलामी के परम्परागत तरीके ख़त्म हो गए. संयुक्त राष्ट्रसंघ जैसी अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के उदय ने उपनिवेशीकरण के परंपरागत उपादानों को अप्रासंगिक कर दिया. बीसवीं सदी के तीस के दशक की मंदी के बाद 'न्यू डील प्रोग्राम' के सहारे जिस 'किन्सीयन' (जॉन मेनार्ड कीन्स, अर्थशास्त्री) लोककल्याणकारी राज्य का तुमार बांधा गया उसे आंठवें दशक तक आते–आते त्याग दिया और पूंजी की वैश्विक प्रतिष्ठा की गई. सन 1990 में इस पूरे परिदृश्य का नतीजा सोवियत रूस (USSR) के विघटन के बाद भूमंडलीकरण के उदय के रूप में हुआ. इस भूमंडलीकरण को खगोलीकरण, वैश्वीकरण, भूमंडीकरण, विश्वायन आदि संज्ञाओं से अभिहित किया गया. वास्तव में उपनिवेशवादी पूंजीवाद का यह नया अवतार था. "पूंजीवाद अपने आरंभ से ही एक भूमंडलीय व्यवस्था की तरह ही रहा है. एडम स्मिथ इस बात को बखूबी जानते थे, और आप स्वयं कम्युनिस्ट मेनिफैस्टो में इस तथ्य की तीक्ष्ण और बिलकुल सटीक शब्दों में भविष्यवाचक अभिव्यक्ति पाएंगे, जहां मार्क्स ने लिखा है कि कैसे 'अपने माल के लिए बराबर प्रसारित होते बाजार की जरूरत के कारण बुर्जुआ वर्ग दुनिया के कोने–कोने की खाक छानता है', कैसे यह 'हर जगह घुसने को, हर जगह पैर ज़माने को, हर जगह संपर्क कायम करने को बाध्य रहता है', कैसे इसने 'भूमंडलीय बाजार स्थापित किया' और 'विश्व बाजार को अपने लाभ के लिए इस्तेमाल कर हर देश में उत्पादन और खपत को एक सार्वभौम रूप दे दिया है'..."[4] हमें इस बात का ख्याल है कि पश्चिमी औद्योगीकरण की कोख से जन्मे बाजारवादी, पूंजीवादी आकांक्षाओं ने ही ब्रिटिश साम्राज्यवाद की भारत में नींव रखी. अतः साम्राज्यवाद के दूसरे एवं अधिक उन्नत दौर की नींव मई, 1945 में द्वितीय विश्वयुद्ध के समाप्त होते ही पड़ गई थी तथा यह दौर बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के समापन एवं उत्तरार्ध के आरम्भ का दौर है. इस तरह बीसवीं सदी के अंतिम दौर में एक निहायत ही जटिल स्थिति से हम रूबरू होते हैं. जिसके पास सम्मोहक उभोक्तावाद का वाग्जाल है. रणधीर सिंह इस बाजारू प्रवृत्ति के लिए मार्क्स का जो हवाला दे रहे हैं वह अनुचित नहीं है. इस उन्नत बाजारवादी विकास का असर यह हुआ की "...बाजार हमारे घरों में घुस ही नहीं आया है, बल्कि उसने हमारे घरों को दूकानों में तब्दील कर दिया है, यानी अब बाज़ार ही हमारा घर हो गया है. हम अब मकानों में नहीं, बाज़ार में रहते हैं. 'बाज़ार से गुजरा हूं ख़रीददार नहीं हूं' की बात अब नहीं रह गई है, और 'उठती है हर निगाह ख़रीददार की तरह' की भी नहीं. अब हम खुद ही बाज़ार हो गए हैं. और, इसीलिए इस बाजारू माहौल के विरूद्ध लिखी जानेवाली कविता आज इतनी महत्त्वपूर्ण हो उठी है."[5] सन 1990 के बाद से भूमंडलीकरण का जो परिदृश्य उपस्थित हुआ उसे हिंदी के कवि नागार्जुन 'हिटलर के तम्बू' के विकास के रूप में देखते हैं – 'मायावी हैं बड़े घाघ हैं इन्हें न समझो मंद/तक्षक ने सिखलाए इनको सर्प नृत्य के छंद/अजी समझ लो उनका अपना नेता था जयचंद/हिटलर के तंबू में अब वे लगा रहे पैबंद.'[6] इस कविता में इसे नए साम्राज्यवाद, इसे भूमंडलीय साम्राज्यवाद की संज्ञा दी जा सकती है, जो 'साफ दिखता नहीं सामने आता नहीं' के 'अब तक छिपे हुए' नख–दंतों का इशारा है. साथ ही उसकी संस्कृति के नाम पर दहकने वाली भट्ठी हिंसा की तरफ भी इशारा किया है. रोचक तथ्य है कि भूमंडलीय साम्राज्यवाद यह दावा करता है वह सांस्कृतिक एकता का प्रतीक है. परन्तु सांस्कृतिक एकता की भूमंडलीय अवधारणा आशंकाओं के घेरे में है. जैसे भूमंडलीय अवधारणा का तर्क है कि यह सांस्कृतिक एकता या सांस्कृतिक विश्वग्राम की परिकल्पना है. प्रभाकर श्रोत्रिय ने लिखा है, 'वसुधैव कुटुम्बकम् उदार चरित्र का लक्षण है जो सारे विश्व में आत्मीयता स्थापित स्थापित करने वाली भावनात्मक अवधारणा है जबकि वैश्वीकरण पूंजीपति देशों का आर्थिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक और सुरक्षात्मक अधिनायकत्व है."[7] वस्तुतः पूंजीवाद की नई भूमंडलीय प्रकृति और प्रवृत्ति बाजारवाद और उपभोक्ता के मायावी संजाल में निहित है. उसकी विपणन संस्कृति में मनुष्य महज एक खरीददार है. वह ऐसा इंसान है जो बजार में ही रहता है. यहाँ तक उसका घर भी बाजार में तब्दील हो गया है. उसकी चेतना की परिधि 'कमोडिटी' से आबद्ध है. इस प्रक्रिया को दर्ज करते हुए अरुण कमल अपनी कविता में लिखते हैं – "कहीं से तुरंत कोई खुशी खोजकर ले आते हैं/उसे अपने पास जमा कर लेते हैं जैसे वह सिर्फ उनके लिए हो/बहुत सारे कपड़े, जूते पहन लेटे हैं, बहुत–सा खाना खा लेते हैं/एक महँगा मोबाइल निकालते हैं अपने अश्लील संदेशों के साथ/दंगों में मारे गए लोगों के घरों से टेलीविजन उठाकर ले आते हैं/ताकि जारी रह सके मनोरंजन."[8] भारत में भूमंडलीकृत–उदारीकृत अर्थवयवस्था के आरंभ (1990) के दस वर्ष के अंतराल पर 'आलोचना' पत्रिका सहस्राब्दी अंक सन 2000 में प्रकाशित हुआ. इसमें प्रकाशित कवि राजेश के

आलेख का शीर्षक ही है – 'अपने समय का मेटाफर खोजती कविता.' इसमें राजेश जोशी लिखते हैं, "आज की कविता के लिए अपने मेटाफर को खोजना उतना आसान काम नहीं है जितना पहले के किसी भी दौर की कविता के लिए रहा है."[9] इस संकट के कारणों की तह में राजेश भूमंडलीय बाज़ार की भूमिका चिन्हित करते हैं. "शीत युद्ध में सोवियत संघ की पराजय और बाद में उसका विखंडन, नई टेक्नोलाजी, बाजारबाद के प्रपंच और सूचना तंत्र की लीलाओं ने मूल अंतर्विरोध के प्रश्न को जितना उलझा हुआ और जटिल बना दिया है, समय के केंद्रीय मेटाफर को अर्जित करने का प्रश्न भी उतना जटिल और उलझा हुआ है."[10] भूमंडलीकरण की आलोचना की प्रक्रिया में भूमंडलीकरण का अवधारणात्मक व क्रियात्मक विरोध करते हुए हिंदी कविता उसकी बाजारवादी अवधारणाओं और सांस्कृतिक पतनशीलता का विरोध करती है. इसके साथ ही उसके हिंसा धर्मी चरित्र को भी बेपर्द करती है. वह बाजारवादी परिणितियों के खोखलेपन की अभिशप्ति को प्रस्तुत करती है.

इस नए जटिल युग में कविता की एक और धारा का विकास देखने को मिलता है. भूमंडलीकरण ने अपनी बाजारवादी महत्त्वाकांक्षाओं के जिस एकरुपीकरण को बढ़ावा दिया उनमें धर्म आधारित साम्प्रदायिकता का विकाश भी शामिल. साम्प्रदायिकता भी एकरूपीकरण और बहुलतावाद के विनाश से ही खाद–पानी ग्रहण करती है. यह संयोग मात्र तो नहीं है कि सन 1990 के बाद में भारत में साम्प्रदायिकता के नए दौर की शुरुआत होती है. बीसवीं सदी के अंतिम दशक में प्रभूत मात्रा में साम्प्रदायिकता विरोधी कविताएं लिखी गईं. और इस विशेष प्रवृत्ति पर केंद्रित पत्रिका[11] और कविता संग्रह[12] का प्रकाशन हुआ. इस कविता आंदोलन के महत्त्व और प्रासंगिकता के बारे में विष्णु नागर और असद जैदी ने "यह ऐसा समय है' कविता–संकलन की प्रस्तावना में कहा है कि "जैसे द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद यूरोप के कवियों के लिए उस विभीषिका का रचनात्मक रूप से सामना किए बगैर लिखना असंभव रहा है या भारत–विभाजन की भयावहता को दरकिनार कर एक समय हिंदी, उर्दू और पंजाबी के लेखक के लिए लिखना मुश्किल था, लगभग वही स्थिति हिंदी के कवियों–कथाकारों के लिए 6 दिसंबर की घटना ने प्रस्तुत किया"[13]

अध्ययन का उद्देश्य

इस शोधपत्र का लक्ष्य / उद्देश्य कविता के उन आशयों को स्पष्ट करना है जिनका उद्देश्य उसकी सामाजिक सोदेश्यता से संलग्न है. कविता किस तरह से मानव मात्र मुक्तिकामी चेतना से आप्लावित है उसी का निदर्शन इस शोधपत्र का काम्य विषय है

निष्कर्ष

अतएव हिंदी कविता ने बीसवीं सदी के अंतिम दशक से और इक्कीसवीं सदी के शुरुआती संकट को चिन्हित किया है. साहित्य की उस मनुष्यीकृत एवं मुक्तिधर्मी चेतना निर्वहन किया है जिसकी पीठिका रामचंद्र शुक्ल और प्रेमचंद जैसे रचनाकारों ने 'राष्ट्रीय आंदोलन' के उठा–पुथलकारी, बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में प्रस्तुत की थी. राजेश जोशी जिस नए 'मेटाफर' (रूपक) की तलाश की जरूरत पर बल देते हैं, उसी रूपक की तलाश करती हुई इस दौर की कविता पूंजी की अपसंकृति में मनुष्य और मनुष्यता के तिरोहित हो जाने के बरअक्स मुब्तिला है.

अंत टिप्पणी

1. *संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संवत् 2097 वि०, पृष्ठ सं० 857*
2. *https://hindisahityavimarsh.blogspot.com/2018/06/hindisahityavimarsh.html*
3. *Stanford Encyclopedia of Philosophy*
4. *https://plato.stanford.edu/entries/aristotle-politics/index.html*
5. *सिंह रणधीर, मार्क्सवाद समाजवाद और भारतीय राजनीति, अनुवादक– जितेंद्र गुप्ता, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम हिंदी संस्करण 2002, पृष्ठ संख्या–205*
6. *त्रिपाठी विश्वनाथ, भूमिका; कृषक रामकुमार,आदमी के नाम पर मज़हब नहीं, दूसरा परिवर्धित संस्करण : 2014, प्रकाशक शब्दलोक, दिल्ली, पृष्ठ 7.*
7. *नागार्जुन, हिटलर के तम्बू में, परिवेश, अंक 14–15, अप्रैल 93 से सितम्बर 93 तक (संयुक्तांक), मुरादाबाद, उ०प्र०, पृष्ठ सं० 128*
8. *इन्द्रप्रस्थ भारती, हिंदी अकादमी दिल्ली*
9. *समकालीन भारतीय साहित्य, (सं.) सुनील गंगोपाध्याय व अन्य, अतिथि सं. प्रभाकर श्रोत्रिय, वर्ष 32, अंक 156, जुलाई–अगस्त 2011, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–29*
10. *आलोचना, अंक एक, अप्रैल–जून, 2000, नई दिल्ली, पृष्ठ सं० 246*
11. *वही, पृष्ठ सं० 246–47*
12. *परिवेश, अंक 14–15, अप्रैल 93 से सितम्बर 93 तक (संयुक्तांक), मुरादाबाद, उ०प्र०*
13. *जैदी असद, नागर विष्णु (संपा०), यह ऐसा समय है, सफ़दर हाशमी मेमेरियल ट्रस्ट, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1994*
14. *जैदी असद, नागर विष्णु (संपा०), यह ऐसा समय है, सफ़दर हाशमी मेमेरियल ट्रस्ट, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1994,*